शांतिकुंज की स्थापना "खोए हुए अध्यात्म" को पुनः जीवित करना।

शांतिकुंज की स्थापना “खोए हुए अध्यात्म” को पुनः जीवित करना।

वर्तमान लेख श्रृंखला में हम शांतिकुंज को समझने का प्रयास कर रहे हैं लेकिन शांतिकुंज को समझने से पहले इस समग्र पृष्ठभूमि को समझना बहुत जरूरी है क्योंकि स्नेह और अपनत्व की आधारशिला पर स्थापित मिशन का यह दृश्यमान कलेवर दोनों ही सत्ताओं के महाप्रयाण के बाद, उन्हीं प्रक्रियाओं को जारी रखने के लिये संकल्पित है, जिनका शुभारम्भ पूज्यवर ने किया ।

अखण्ड ज्योति मार्च 1969 के “अपनों से अपनी बात” सेगमेंट में परम पूज्य गुरुदेव ने बताया था कि वह मथुरा छोड़ कर शांतिकुंज क्यों जा रहे हैं। उस सेगमेंट का शीर्षक था

“हमारे पाँच पिछले एवं पाँच अगले कदम”

गुरुदेव बता रहे थे कि हम मथुरा स्थायी रूप से छोड़कर जा रहे हैं। माताजी हिमालय और गंगातट के वातावरण में एक ऐसे स्थान पर रहेंगी, जहाँ लोग उनसे और हमसे संपर्क रख सकें। हरिद्वार और ऋषिकेश के बीच गंगा तट पर, जहाँ सात ऋषि तप करते थे, जहाँ गंगा की सात धाराएँ है, उस एकाँत भू-भाग में डेढ़ एकड़ माप की छोटी सी भूमि प्राप्त कर ली गयी है, माताजी वहीं रहेंगी। इस भूमि पर कुछ व्यवस्थाएं बना ली गयी हैं जो धीरे-धीरे आगामी ढाई वर्ष में पूरी हो जायेंगी। उस भू-भाग में फूल लगा दिए हैं, खाने को फल-शाक, एक गाय जिसका घी अखण्ड दीपक के लिए मिल जाए व आहार के लिए छाछ, एक कर्मचारी पेड़-

पौधों, गाय को संभालने के लिए और रहने को चार छोटी सी कुटियाँ।

कौन जानता था कि परम पूज्य गुरुदेव जिस शाँतिकुँज के बारे में इतने छोटे से स्वरूप के माध्यम से परिचय दे रहे थे, आने वाले दिनों में इतना विराट रूप ले लेगा। पाठकों को यह बताना आवश्यक है कि 1962-63 में पूज्यवर ने हिमालय से लौटकर परिजनों को अगले नौ वर्ष में शांतिकुंज की स्थापना और 1990 में महाप्रयाण तक की बहुत सारी बातें बता दी थीं।

गुरुदेव ने कहा कि मैं हमेशा के लिए गायत्री तपोभूमि मथुरा छोड़कर चला जाऊँगा एवं अपना कार्यक्षेत्र हिमालय को बनाऊँगा । ढाई वर्ष पूर्व भूमिका बनानी शुरू कर दी थी । क्षेत्रीय दौरों की व्यस्तता के बीच दो-

तीन दिन के लिये ही सही हरिद्वार आना, सप्तऋषि कुटी प्रज्ञा भवन में ठहरना एवं भावी व्यवस्था का सारा सरंजाम यहीं बैठकर बनाना। विश्वामित्र की तपस्थली के रूप में कभी प्राण चेतना से अनुप्राणित रही जिस भूमि का चयन पूज्यवर ने हिमालय की शिवालिक एवं गढ़वाल श्रृंखलाओं के मध्य हरिद्वार से छह किलोमीटर दूर किया था, घुटनों तक पानी, कीचड़ से भरा यह स्थान बहुत छोटा-सा था, जहाँ पूज्यवर ने स्वयं ईंटों को ढो-ढोकर रहने योग्य स्थान बनाया। जमीन की बिक्री करने वाले दलाल ने कई बार कहा इससे भी अच्छा ऊँचा स्थान है, जहाँ नींव खोदते समय मिट्टी की भराई की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, सस्ते में उपलब्ध है, उसे भी देख लें, किंतु गुरुदेव का दृढ़ विश्वास था कि

“ऋषि परम्पराओं का बीजारोपण तथा उसे क्रियारूप देने का कार्य यदि कही होना है तो इससे श्रेष्ठ स्थान कहीं नहीं होगा, क्योंकि इस भूमि में परिष्कृत चेतना विद्यमान है । यहाँ थोड़े से जप में भी असीम फलश्रुति मिलती है।”

इसी सेगमेंट में गुरुदेव लिखते हैं “यहाँ से जाने के बाद शरीर जीवित रहने तक तीन महत्वपूर्ण कार्य करने है ।

1) उग्र तपश्चर्या,2) गुप्तप्रायः अध्यात्म की साधना,3) परिजनों की आत्मीयता, ममता का विस्तार।

इसी में उन्होंने आगे लिखा- “ रामकृष्ण परमहंस, योगिराज अरविंद, महर्षि रमण की अनुपम साधनाओं ने भारत का भाग्य परिवर्तन करके रख दिया । अगले

दिनों भारत को हर क्षेत्र में विश्व का नेतृत्व करना है। अभी तो उसे केवल भाग्य परिवर्तन का ही अवसर मिला है। इसके लिए सूक्ष्म वातावरण को गरम कर सकने वाले महामानवों की आवश्यकता पड़ेगी । यह कार्य स्वतंत्रता संग्राम से भी अधिक भारी होगा। पूज्यवर ने लिखा कि हमें उपरोक्त तीन तपस्वियों की बुझी पड़ी परम्परा को फिर से जीवित करना है ताकि सूक्ष्म जगत गरम हो सके, उत्कृष्ट स्तर के महामानव पुनः अवतरित हो सकें । शाँतिकुँज का निर्माण सम्भवतः इस तपः पूत वातावरण में साधना के बीजांकुरों का प्रस्फुटन और एक सजीव पौध-शाला निर्माण के लिए प्रयुक्त था, जहाँ बाकि दो काम भी साथ चल सके ।

हमारे प्राचीन अध्यात्म की ज्ञान-विज्ञान परम्परा का पुनर्जीवन, अध्यात्म विज्ञान की शोध साधना जैसा भगीरथ कर गये, सम्भवतः ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान के माध्यम से शाँतिकुँज में विराजमान ऋषि सत्ता के मार्गदर्शन में होना था। जिस प्रकार आत्मा की अनंत शक्ति का प्रयोग करके प्राचीनकाल में लोग अपने आंतरिक और भौतिक प्रगति का पथ प्रशस्त करते थे, रीति-नीति में आध्यात्मिक आदर्शों का समावेश रहने से सर्वत्र सुख-शांति का साम्राज्य था, उस "खोए हुए अध्यात्म" को पुनर्जीवित करने का कार्य जीवन के इस अंतिम अध्याय में ब्रह्मवर्चस द्वारा सम्पन्न होना था। गुरुदेव का यह चिंतन शाँतिकुँज से ही क्रियान्वित होना था।

गुरुदेव ने अपनी वेदना व्यक्त करते हुए मार्च 1969 की अखण्ड ज्योति में लेखनी से अभिव्यक्ति दी है कि आज धर्म, नीति, सदाचरण आदि की शिक्षा देने वाले ग्रंथ एवं प्रवक्ता तो मौजूद हैं लेकिन उस विज्ञान की उपलब्धियाँ हाथ से चली गई, जो इसी शरीर में विद्यमान अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय शक्ति कोषों की क्षमता का उपयोग करके व्यक्ति एवं समाज की कठिनाइयों को हल कर सके। यदि इन लुप्त विद्याओं को खोज निकाला जाय तो भौतिक विज्ञान को परास्त करके पुनः अध्यात्म विज्ञान की महत्ता स्थापित की जा सकेगी और लोकमानस के प्रवाह को उस स्थिति की ओर मोड़ा जा सकेगा जिसकी हम आशा करते हैं।

ब्रह्मवर्चस की स्थापना का मूलभूत आधार गुरुदेव के मानस में आठ वर्ष पूर्व ही बन चुका था । गंगा की गोद,हिमालय की छाया में स्थित स्थान जो उच्च आध्यात्मिक शोधों के लिए सही सिद्ध हो, वह शाँतिकुँज के अंग के रूप में ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान 1969 में जन्म ले चुका था।

मात्र अध्यात्म विज्ञान की शोध ही नहीं अपितु समस्त लुप्त हुई ऋषि परम्परा का बीजारोपण एवं क्रियान्वयन किस तरह शाँतिकुँज और ब्रह्मवर्चस के इक्क्ठे प्रयास से होगा, यह भी इस भविष्यदर्शी युग ऋषि ने अवतारी सत्ता द्वारा अपने दिव्य चक्षुओं से देख लिया था। आज का शाँतिकुँज एवं ब्रह्मवर्चस उसी परिकल्पना की फलश्रुतियाँ हैं । स्थूल रूप में चाहे कोई भी कार्यकर्त्ता

दिखाई पड़े, परन्तु वह ऋषि चेतना ही इन सारे क्रिया -कलापों को चला रही है।

ब्रह्मवर्चस भले ही वैज्ञानिकों की भाषा में अध्यात्म विद्या का ऐसा प्रस्तुतिकरण न कर पाया हो जैसी वह आशा करते हैं लेकिन “संजीवनी साधना” करने वाले साधकों पर निरंतर प्रयोग करने के बाद जो ज्ञान अनुभूतियाँ हुई उसे लगातार प्रकाशित किया गया है। इस प्रक्रिया से हजारों साधक तैयार किये गए हैं।

शोध वही सफल होती है जो धरातल तक कार्य करने वाले व्यक्तिओं तक पहुँचे, उनका भावनात्मक कायाकल्प करके दिखा दे, परिवार में संस्कारों को इस तरह गूँथ दे कि वोह संस्कार उनके रोज़मर्रा जीवन का अंग बन जाएं। यही हुआ और 80 हजार से अधिक

साधक इस प्रयोग-परीक्षण को करने,ऊर्जा अनुदानों को पाने के लिए शाँतिकुँज आते हैं और लाभान्वित होकर जाते हैं । युग ऋषि यही चाहते थे।

गुरु सत्ता ने शाँतिकुँज से अनवरत ममत्व का विस्तार करने का निर्देश दिया था । इस के अंतर्गत पूज्यवर ने जो विशेष दायित्व अपने कंधों पर लिया, वह था परम वंदनीय माताजी के ऊपर एक अभूतपूर्व स्तर का “शक्तिपात” ताकि माताजी हरिद्वार में रहकर वह कार्य संपन्न कर सकें जो गुरुदेव और वंदनीय माताजी मथुरा में रहकर सम्पन्न किया करते थे । माताजी को उन्होंने अपने परिजनों के बीच जोड़ने वाली एक संपर्क कड़ी बताया और यह कहा कि सहारा ताकने वाले कमजोर और छोटे बालक जो गुरुसत्ता के मथुरा से जाने

के बाद आशा रखेंगे वह उन्हें माताजी के माध्यम से सतत् मिलता रहेगा। 1971 के बाद शाँतिकुँज में वंदनीय माताजी की मुख्य भूमिका आरम्भ होनी थी। गुरुदेव पृष्ठभूमि में रहकर सारा कार्य करते रहने वालों में थे। ये सारी घोषणाएँ मथुरा से विदाई के पूर्व वर्ष (1970) में ही कर दी।